तदीक्षण

विचारक-

ब्रह्मयोगी संविदानन्द

संकलन-

ब्रह्मप्रज्ञा एवं अनन्तप्रज्ञा

आर्थिक सहयोग-

मुकेश गुप्ता, चण्डीगढ़

प्रकाशक-

मुकेश कुमार

571, गली नं० 16,

गाँधी कालौनी, मुजफ्फरनगर

मोबाइल- 09319170555

तिथि- फाल्गुन २०७०, मार्च २०१४ **मूल्य**- 50/-

मुद्रक- ईशान प्रिन्ट सोल्यूशन, मु०नगर मो० 9358919245

तदीक्षण

विषय सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ सं०
1	सर्वत्र तदीक्षण-1	1
2	सर्वत्र तदीक्षण-2	14
3	तदीक्षणका अनुभव	25
4	तदीक्षणके लिए आत्मविचार	34
5	अन्तःतदीक्षण	52
6	तदीक्षण और स्वेक्षण	66
7	स्वेक्षण अर्थात् आत्मरूप देखना	73
8	सदैव आत्मानुभव करो	80
9	सर्वत्र आत्मानुसन्धान	85

सर्वत्र तदीक्षण-१

तदीक्षणमें ईक्षण मुख्य है। ईक्षण माने गहराईसे देखना। मनोयोगपूर्वक देखना ईक्षण है। देखना माने ग्रहण करना। ईक्षण माने संवित्, चाह और एकाग्रतापूर्वक किसीको देखना, ग्रहण करना। ईक्षणमें संकल्प भी है, रुचि भी है व संवित् भी है। किसका ईक्षण करना है? वह हमें ज्ञात नहीं है, हमें उसका अनुभव नहीं है। अभी वह 'तत्' है। तदीक्षणका प्रयोग करनेमें ज्ञानात्मक संयम भी है और क्रियात्मक संयम भी है। तदीक्षणमें लक्ष्यको देखना है। माना हुआ लक्ष्य है श्रीदत्तात्रेय या कोई भी साकार परमात्मा। इसलिए अभी उसे 'तत्' कहा है। उस माने हुए लक्ष्यको संवित्पूर्वक अनुभव करना तदीक्षण है।

परमात्मा सर्वत्र, सर्वदा, सर्वरूपमें हैं। हमें सबजगह परमात्माकी भावना करनी है, वृत्ति बनानी है। अपने लक्ष्यकी वृत्ति आदेशसे बनानी है। **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** को स्वीकार करके सबजगह उसे अनुभव करो। लोग प्रायः अनुकूलतामें, अच्छी वस्तुमें, व्यक्तिमें तो परमात्माकी भावना कर लेते हैं; परन्तु प्रतिकूलता व बुरे लोगोंमें, बुराईमें नहीं कर पाते हैं। स्वस्थतामें तो भगवदाकारवृत्ति की जाती है, लेकिन रोगमें नहीं। प्रतिकूल प्रतीतियोंमें व जड़ वस्तुओंमें भगवदाकारवृत्ति बनानेका भी अभ्यास करो।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'के लिए, अद्वैतभावके लिए प्रथम अभ्यास है- तदीक्षण। अभी भगवान्‌को 'तत्' रूपमें जानो। जो-जो स्थूलरूपसे ग्रहण हो रहा है; उसमें भगवद्‌भाव करना तदीक्षण है। जहाँसे छूटना है अथवा जो कुछ प्राप्त करना है- दोनोंके लिए भगवद्‌भाव करो, तो दोनों ही

कार्य अपने संकल्पानुसार सम्पन्न हो सकते हैं। तदीक्षण संयमका प्रयोग है और लक्ष्यकी ओर झुकाव है। अद्वैतभावकी ओर जानेके लिए तदीक्षणका प्रयोग, अभ्यास करना चाहिए। अनुकूलता व प्रतिकूलताकी संवित् और उनके आग्रहको शिथिलकरके समताकी ओर जानेके लिए तदीक्षणका प्रयोग जरूरी है। सीधे समत्वमें जाना कठिन है।

तदीक्षणके सूक्ष्म प्रभावसे संकल्प साकार हो जाता है। तदीक्षणसे वैसी तरंगें बनने लगती हैं, जैसा हम चाहते हैं। संकल्प-चिकित्सा सूक्ष्मसे स्थूलकी ओर जाती है। जब हम दृष्टिपूर्वक भावना करते हैं, तो पञ्चभूतोंमें परिवर्तन होता है। पहले रूपमें तदीक्षण करना चाहिए। फिर शब्दमें, स्पर्शमें, रसमें, गन्धमें तदीक्षण किया जाता है। इसके बाद **'जित देखूँ तित स्याममयी'** होने लगेगा।

अनेक नामरूपोंके प्रभावोंको क्षीण करनेके लिए अथवा उनका अतिक्रमण करनेके लिए या उनसे अप्रभावित रहनेके लिए एक नाम और एक रूपका आलम्बन लिया जाता है। भक्तिमें भगवान्‌के एक नाम और एक रूपको सिद्ध करनेके लिए अन्य सभी नामरूपोंको गौण किया जाता है। भगवान्‌के रूपका स्मरण प्रतिकूल वेदनोंसे बचाता है और अनुकूल वेदनोंके बारेमें स्वतन्त्रता प्रदान करता है कि हम जब चाहें, तब अनुकूल वृत्ति बना सकें। परमात्मा आनन्दस्वरूप हैं, अतः आनन्दाकारवृत्ति बनाओ, तो आप सुखी हो जाओगे। यदि आपको दुःखानुभव हो रहा हो, तो मुस्कुराहटकी वृत्ति बनाओ। इससे दुःखाकारता समाप्त हो जायगी; क्योंकि दो वृत्तियाँ एक-साथ नहीं रह सकतीं। आनन्दकी वृत्ति मुस्कुराहटके रूपमें बन रही है तो दुःखाकारवृत्ति नहीं बन सकेगी अर्थात् आप

दुःखी नहीं हो सकोगे। इससे ऐसी स्थिति आ जायगी कि पूरी सृष्टि भी आपको दुःखी नहीं कर सकेगी।

भगवान्‌के जिस रूपकी हम भावना करते हैं, हमारा अहं या मन ही उस रूपको धारण कर लेता है। अतः हमारा मन भगवदाकार हुआ, हमारा मन आनन्दाकार हो गया, हमारा मन सदाकार, चिदाकार हो गया। साकारकी भावनामें यह भाव रहता है कि 'भगवान् सब जगह हैं।' निराकारकी भावनामें यह भाव रहता है कि- 'भगवान्‌में सब हैं।' 'भगवान् सर्वत्र हैं'- इस बातका पालन करनेके लिए हम उन्हें सर्वत्र देखनेका अभ्यास करेंगे। सर्वत्र भगवद्‌भाव करेंगे। सर्वत्र सच्चिदानन्दका अनुभव करना ही तदीक्षण है। जैसे भगवान्‌की एक आकृतिमें सत् भी है, चित् भी है, आनन्द भी है। ऐसे ही सभी आकृतियोंमें सत् है, चित् है, आनन्द है। हमें

उन्हें सर्वरूप देखना है- यही तदीक्षण है।

तदीक्षण-विधि- भगवान्‌के जिस रूपको आपने गहराईसे देखा है, उस रूपको स्मरण करेंगे। सब आकारोंको पराभूत करनेके लिए, सब आकारोंका अतिक्रमण करनेके लिए उस चितवनको याद करेंगे। आकारोंके पश्चात् शब्दमें भी उसी परमात्माका अनुभव करेंगे।

सर्वरूपमें तदीक्षणके लिए पहले अपनेमें तदीक्षण करो अर्थात् अपनेको भगवद्‌रूप अनुभव करो। पहले आकृतिके ख्याल आनेपर दुःखी-सुखी होते थे, तद्‌रूप हो जाते थे। अब तदीक्षणके द्वारा उससे असंग होना सीख लो। विषयके स्थानपर भगवान्‌को अनुभव किया तो विषयका प्रकाशन बन्द हो गया। भगवान्‌को देखनेसे विषयको हटाना सीख लिया।

हमारे शरीरको नियन्त्रित करनेका भौतिक यन्त्र सिर है। जब इसमें आनन्दकी, ज्ञानकी,

चेतनकी भावना करेंगे, तो यहाँ ज्ञान और आनन्द ही रहेगा। इसके बाद पूरे शरीरमें भी तदीक्षण करो। आपको अपना देह दीख रहा है, इसके स्थानपर भगवान्‌का ख्याल कर लो। बादमें बाहरकी वस्तुओंमें भगवद्‌भाव करो। मनमें यह भाव रखना है कि भगवान्‌ने ही यह शंसन किया है कि- 'मैं सर्व हूँ।' **'सर्वं ह्येतद् ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, वासुदेवः सर्वम्, ब्रह्मैवेदं सर्वम्, आत्मैवेदं सर्वम्, श्रीदत्तः सर्वम्।'**

इसी शंसनके अनुसार वृत्ति बनानी है अर्थात् सर्वत्र व सर्वरूपोंमें भगवान्‌का ही अनुभव करना है। जाग्रत् और स्वप्नमें दुःखकी वृत्ति बनती है, सुषुप्तिमें नहीं। सूक्ष्ममें तदीक्षणको अन्तःतदीक्षण कहते हैं। तदीक्षणकी सम्यक्‌ता यह है कि दिनमें अनेक बार इसकी याद आने लगे और जो भी सामने आए, उसमें स्वाभाविकरूपसे तदीक्षण होने लगे। सम्यक्‌ज्ञानके

लिए ही ऐसा भावनात्मक प्रयास हम कर रहे हैं।

तदीक्षणका प्रयोग व्यापकरूपसे होने लग जाय। जो भी दिखाई दे रहा है, वह परमात्मा ही दीख रहा है- ऐसी भावना बन जानी चाहिए। इसपर विचार भी करना चाहिए; क्योंकि विचार अविचारका निवारक होता है और विचार जड़ताको क्षीण भी करता है।

सर्वत्र भगवद्दर्शनका स्वभाव बनाना है; जिसका पर्यवसान सर्वात्मभाव और **'अहमेवेदं सर्वम्'**में होगा। तदीक्षणके अभ्याससे ईश्वरका अनुभव कर सकते हैं। यदि तदीक्षणका अभ्यास कर लिया जाय; तो बोध होनेके पश्चात् सर्वात्मभाव अपने-आप स्थिर हो जायगा। सर्वात्मभावका स्थूल अर्थ है- अनुकूलता-ही-अनुकूलता। आत्मा माने होता है- सुख। सर्वात्मभावमें सबकुछ सुखरूप हो जायगा अर्थात्

अनुकूल हो जायगा। हम सुखको ही चाहते हैं। सुख माने मैं अर्थात् हम अपनेको ही चाहते हैं। सर्वात्मभावमें सबकुछ आत्मरूप- मैंरूप हो जायगा। यही पूर्णबोधका लक्षण है। इसे हम तदीक्षणके द्वारा प्रारम्भ करेंगे। सर्वत्र भगवद्भावका अनुसन्धान करनेसे वासनाओंका और मनका क्षय होगा। ये प्रभाव तदीक्षणसे स्वभावतः ही आते हैं। आपको तो तदीक्षणका अभ्यास करना है।

तदीक्षण अध्यारोपित बोध है। भगवान् श्रीदत्तात्रेय या भगवान् श्रीकृष्ण आदि जो भी इष्ट हों, वे हमारे शास्ता हैं, हमारे गुरु हैं, सबके गुरु हैं और सर्वशक्तिमान् हैं आदि- ऐसी मनमें धारणा करनी है। तदीक्षणसे वे आपको दीखने लग जायँगे। आपको यही लगेगा कि मैं ही दत्त हूँ। अपने शरीरमें भगवान्को देखनेपर भगवान्की विशेषताएँ आपमें आने लगेंगी।

पहले किये गये अध्यारोपोंको अपवादित करनेके लिए ही यह अध्यारोप किया जाता है। जिसके प्रति रोग-द्वेष है, तदीक्षण करनेसे उसमें राग-द्वेष समाप्त हो जायगा। जिसका आदर करोगे, वह जीवनमें प्रभाव दिखा देगा। जिसका तिरस्कार करोगे, वह लुप्त हो जायगा। असद्वृत्तियोंका तिरस्कार करनेपर वह जीवनसे लुप्त हो जायँगी। तिरस्कार माने उधर ध्यान न देना। समताकी दृष्टिसे ध्यान न देना है- उपेक्षा। इनका साधन है- तदीक्षण। भगवान्‌को देखनेपर हेय या त्याज्य वस्तुपर ध्यान नहीं जायगा। सृष्टिमें सद्‌भावका अन्यतम साधन है- तदीक्षण।

अपने शरीरमें, रोग-शोकमें और दूसरोंमें तदीक्षण करो। भगवान् मंगलस्वरूप हैं। अतः आपको सर्वत्र अनुकूलता, मंगल, शुभ ही प्राप्त होगा। जिससे आप व्यवहार कर रहे हो, उसके प्रति आपकी भगवद्‌भावना है। हमें ज्ञानकी

पूर्णताकी ओर जाना है। अतः अभीसे सम्यक् तदीक्षण करो। जो कुछ भी दिखाई दे, उसमें भगवान्‌की सत्ताका अथवा भगवान्‌की आकृतिका अनुभव करो। ऐसे ही शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध, रसमें भी तदीक्षण करो। जैसे, ठण्डी हवाका स्पर्श हो रहा है, तो हमें यह महसूस करना है कि यह हवा नहीं है, यह तो भगवान् है- ऐसी वृत्ति बनाओ। कड़वेमें, मीठेमें, खट्टे रसमें भगवद्‌भावका अनुभव करो। इससे आपके जीवनमें स्वातन्त्र्यका अनुभव होगा। जिस वृत्तिको बनाना चाहो या हटाना चाहो, वैसा प्रतीत होने लग जाय- यही स्वातन्त्र्य है। भगवान्‌की भावनासे अकल्पितकी ओर, बोधकी ओर इशारा मिल जायगा।

पहले भगवान्‌को देखो; फिर कुछ करो। पहले आकाश है, बादमें कुछ भी है। बिना आकाशके किसी आकारको नहीं देख सकते।

जो पहले है, उसे पहले देखो। जो आदि है, मूल है, उसे पहले आने दो। कारणको पहले देखो, कार्यको बादमें। कारणको पहले देखनेपर कारणके गुण प्रकट होंगे और अन्यथा रूप आयेंगे ही नहीं। यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है। श्रीविनोबा भावेका कहना है कि यदि वृत्तिके प्रथम क्षणको हम काट दें, तो अगली वृत्ति हमारे वशमें हो जायगी। व्यक्ति वृत्तिके प्रथम क्षणमें तादात्म्यापन्न होते ही उसके वेगमें प्रवाहित हो जाता है। अतः वृत्तिके प्रथम क्षणमें भगवान्‌को देख लो, तो अगला क्षण सुधर जायगा। यदि खानेकी वृत्ति उठ रही है, तो भगवान्‌की याद कर लो, तो उसका वेग, उसकी आसक्ति और उसके प्रति भ्रान्तिका निर्माण नहीं होगा।

भोजनमें तदीक्षण करना रूपमें तदीक्षण है और उसके स्वादमें तदीक्षण करना रसमें तदीक्षण है। तदीक्षणकी याद आनेपर तदीक्षण

नहीं किया, तो यह उसका तिरस्कार हुआ। तिरस्कार करनेपर दोबारा याद नहीं आयेगी। याद आते ही तदीक्षण करनेसे पुनः जल्दी याद आयेगी।

अपने शरीरसे 'मैं' बुद्धि हटानेके लिए, देहाध्यास शिथिल करनेके लिए शरीरमें तदीक्षण करो। शरीरमें तदीक्षण करनेसे आपका शरीर पवित्र हो जायगा।

ॐ ब्रह्म सर्वम्

सर्वत्र तदीक्षण-२

तदीक्षणकी प्रकृति बहुत विलक्षण है। यह प्रक्रिया अन्तिम पहुँचको, अन्तिम लक्ष्यको ध्यानमें रखकर क्रियान्वित होती है। वेदान्ती नेति-नेति प्रक्रियापर ही जोर देते हैं। उपनिषदोंमें अन्य प्रक्रियाएँ भी हैं। ओमिति-ओमिति प्रक्रिया वैदिक है, श्रौत है। आत्मसाक्षात्कार, ब्रह्मसाक्षात्कार ओमिति प्रक्रियासे भी होता है। इस प्रक्रियाके अन्तर्गत तदीक्षण है। योगवासिष्ठमें भी तदीक्षणकी बहुत महिमा बताई गई है।

सबको दृश्य अथवा उसके प्रति

असम्यक् दृष्टिके कारण परेशानी व तनाव होता है। विघ्न भी दृश्यरूप होते हैं। अहंकार भी दृश्यके कारण ही बनता है। यदि दृश्य नहीं है, तो हम द्रष्टा भी नहीं हैं। त्रिपुटीमें, एकके भी अभाव होनेपर पूरी त्रिपुटी ही नहीं रह पाती। जैसे, यदि दर्शनवृत्ति न हो, तो न दृश्य रहेगा और न ही द्रष्टा। यदि द्रष्टा न हो तो दृश्यका कोई अस्तित्व ही नहीं है। कौन जानेगा कि दृश्य है? यदि दृश्य न हो तो द्रष्टा किसका होगा? त्रिपुटीमें दृश्यका और दर्शनवृत्तिका तो अभाव हो सकता है; परन्तु द्रष्टा लुप्त नहीं हो सकता। द्रष्टाकी दृष्टि बदलनेपर दृश्य बदल जाता है। यदि ऐसी दृष्टि है कि समस्त दृश्य वर्ग प्रतीतिमात्र है, तो वह हमें प्रभावित नहीं करेगा।

दृश्य प्रतीतिमात्र कैसे हो? उसकी एक युक्ति है कि दृष्टिमें भगवद्भाव ले आओ, तो

वह दृश्यको तद्रूप देखेगा। द्रष्टामें भगवद्भावसे वह भी तद्रूप हो जायगा। पूरी त्रिपुटी भगवद्भावसे युक्त हो जायगी अर्थात् अद्वैतरूप हो जायगी, अद्वैतकी सिद्धि हो जायगी।

हमें **'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते'** का अनुभव करना है। पूर्ण ही परोक्ष है, पूर्ण ही प्रत्यक्ष है- यह कैसे अनुभव हो? अर्थात् मैं ही यह हूँ, मैं ही वह हूँ। पूर्ण ही यह है, पूर्ण ही वह है। पूर्णका अर्थ है मैं अर्थात् श्रुतिने मैं का उल्लेख पूर्णके रूपमें कर दिया है। इसीप्रकार 'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः' का अर्थ है- दृश्य भी वही, द्रष्टा भी वही और दर्शन भी वही, तभी पूर्णताका अनुभव होगा।

सर्वत्र भगवद्भाव अर्थात् **तदीक्षणका अर्थ** क्या है? तत् माने परमात्मा, अद्वयज्ञान अद्वयसुख अर्थात् मैं। तत् माने निराकार ईश्वर, आकाश। यदि यह समझमें नहीं आ रहा हो, तो

परमात्माके प्रति जो आपकी मान्यता या भावना है, उसे स्वीकार कर लीजिए- जैसे, राम, कृष्ण आदि साकार परमात्मा ही यहाँ तत्का अर्थ है। यहाँसे प्रारम्भ कीजिए। परमात्माका ईक्षण शुरु करनेसे बादमें वह निर्गुण-निराकारमें पर्यवसित हो जायगा और अविस्मृति आ जायगी। इसमें कोई शर्त नहीं है। तब हृदयसे ये उद्गार प्रकट होंगे कि–

'रहते हो सदा मेरी आँखों में,
पास आओ तो क्या दूर जाओ तो क्या।
मेरे हृदय से भी नजदीक हो तुम,
याद आओ तो क्या भूल जाओ तो क्या।
हर रूपमें दिखता अक्स तेरा,
रूठ जाओ तो क्या मुस्कुराओ तो क्या।
नहीं भेद रहा मुझमें-तुझमें,
मिल जाओ तो क्या बिछुड़ जाओ तो क्या।'

इत्यादि।

अविस्मृतिमें अपेक्षाएँ समाप्त हो जाती हैं। ये लक्षण व उद्‌गार अविस्मृतिके हैं। अर्थात् न मिलना, न बिछुड़ना, न याद आना, न भूलना। अविस्मृति निर्गुण-निराकारमें ही हो सकती है, शेष सब जगह विस्मृति होती है। जो सुषुप्तिमें नहीं रहता, उसकी अविस्मृति नहीं हो सकती। अविस्मृति उसीकी हो सकती है, जो सुषुप्तिमें शेष रहता है या जो सुषुप्तिको भी मिटा देता है।

तदीक्षणमें इतनी सामर्थ्य है कि वह अन्तःकरण-शुद्धिसे लेकर परमात्म-साक्षात्कारतक पहुँचा सकता है। सूक्ष्म बुद्धिकी अपेक्षा बुद्धिकी शुद्धता श्रेष्ठ है। बुद्धि सूक्ष्म भी होनी चाहिए। बुद्धि सूक्ष्म होनेपर अहंकार आ सकता है और यही उसकी अशुद्धि है। सूक्ष्मबुद्धि शुद्ध हो जाय- ऐसा अपवाद तो हो सकता है; परन्तु शुद्धबुद्धि सूक्ष्म हो जायगी- यह अनिवार्य है।

तदीक्षण बुद्धिको शुद्ध करता है, अहंकारको शुद्ध करता है, पूरे अन्तःकरणको शुद्ध करता है।

पहले यह निर्णय कर लेना चाहिए कि हमें तदीक्षण किसका करना है? सगुण-साकारका, निर्गुण-निराकारका या सगुण-निराकारका? तदीक्षण अद्वयज्ञानका होता है, अपनी स्वयंताका होता है या जिसे हम मानते हैं, उसका तदीक्षण होता है। तदीक्षण करनेसे सभी मान्यताएँ आत्मरूप हो जायँगी। **'जित देखूँ तित स्याममयी है'** इसप्रकार तदीक्षणका प्रारम्भ करनेसे निर्गुण-निराकारतक पहुँच सकते हैं।

अपने इष्टको सर्वत्र-सर्वदा-सर्वरूपोंमें व अपने रूपमें भी अनुभव करें। जो सर्वमें हो सकता है, वही मुझमें भी है। जो मुझमें है, वही सर्वमें है। जो सर्व हो सकता है, वह मैं क्यों नहीं होगा? इसप्रकारसे अपनेमें व सबमें अपने

इष्टको देखें। यहींसे तदीक्षणका प्रारम्भ करें। तदीक्षणकी प्रारम्भिक स्थितिसे ही अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। इसके बाद तदीक्षण स्वेक्षण हो जाता है। सब आत्मरूपमें अनुभव होने लगता है, द्वैतभाव नहीं रहता। यदि सुषुप्तिके विचार, अनुसन्धान या चिन्तनसे अपना परिचय प्राप्त कर लो, तो उस परिचयसे अपनेको अर्थात् आत्माको सर्वत्र अनुभव करो। जो भी प्रतीत हो रहा है, वह वही है जो सुषुप्तिमें शेष रहता है। इस आधारपर स्वेक्षण कर सकते हैं। अभी तो सत्यकी भावना की है, कल्पना की है, नकल की है। नकलसे ही असलतक पहुँचेंगे अर्थात् भावनासे ही बोध होगा।

तदीक्षणमें विषय और विषयीमें भगवद्भाव किया जाता है। सबके मनमें यह धारणा तो रहती ही है कि भगवान् आनन्दस्वरूप हैं, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हैं। प्रतीति त्रिगुणात्मक है

और प्रकृतिका कार्य है; परन्तु तदीक्षणमें प्रकृतिके आश्रयको देखा जाता है। इससे प्रतीति शुद्ध हो जायगी। जब अपनेमें भगवद्भाव करते हैं, तो हमारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। अपना सम्यक् परिचय प्राप्त हो जाता है तथा उसकी परिस्थितियाँ भी मिल जाती हैं। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें बताया है कि गोपियोंने किसी भी साधनका आश्रय नहीं लिया। शास्त्रोंमें जितने भी साधन बताये गये हैं, उनमें कर्ताकी जरूरत होती है, उनमें कर्तृत्व होता है। शरणागतिभावमें भी सूक्ष्म कर्तृत्व है। तदीक्षणमें अपनी ओरसे अध्यारोप या कर्त्तापन नहीं ला रहे हैं। बल्कि जैसी वस्तु है, वैसी ही भावना बना रहे हैं। तदीक्षणमें सत्यानुसारी भावना होती है। सब परमात्मा है, तो वैसा ही देखना तदीक्षण है। इसमें कर्त्तापन अत्यन्त सूक्ष्म व गौण माना जाता है। जिस साधनमें कर्तृत्व कम होता है, गौण

होता है, उससे शुद्धि होती है। गोपियोंने न तो स्वाध्याय किया था, न महापुरुषोंका सत्संग किया था और न तीर्थ-यज्ञ-तपादि किये थे। इसप्रकार उन्होंने कोई साधन नहीं किया था, केवल भगवद्भावसे वे अपने इष्टसे एक हो गयीं थीं।

तदीक्षण ही सही सत्संग है। सत् है- परमात्मा और तदाकार वृत्ति है- संग। प्रायः सत्चर्चाको ही सत्संग माना जाता है। जबकि सत् के भावकी वृत्ति बनाना और वही हो जाना सत्संग है और यही तदीक्षण है।

तदीक्षण की मुख्य विशेषता क्या है? जब हम दृश्यमें, अनुभाव्यमें, प्रतीतिमें तदीक्षण करते हैं, तो पहले हमारा अहंकार भगवदाकार होता है, बादमें भगवान्की भावना सामने वाले दृश्यमें होती है। इससे कर्त्तापन मिटने लगता है। अपने रूपमें आत्मानुभव किये बिना, निराकार

आकाश या कृष्ण अनुभव किए बिना दृश्य या प्रतीतिमें भगवान् (आत्मा)की भावना नहीं हो सकती। इसके द्वारा अहंकारकी निवृत्ति सही रूपसे होती है। ऐसा तो किसी अन्य साधनसे नहीं हो सकता। अंहकारकी निवृत्तिका अर्थ है- जो वास्तविक मैं है, उसका साक्षात्कार हो जाना।

गोपियोंको तदीक्षणसे, सर्वत्र भगवद्भावसे, **'जित देखूँ तित स्याममयी'** से समाधि जैसी स्थिति प्राप्त थी। उसका वर्णन श्रीकृष्णने भागवतके एकादश स्कन्धमें इसप्रकार किया है-

'ता नाविदन् मय्यनुषंगबद्ध-
धियः स्वमात्मानमदस्तथेदम्।
यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये
नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे॥'

(भागवत० ११/१२/१२)

उन्हें अपने शरीरकी, परिवारकी, लोककी, परलोककी, समाजकी बाधा या स्मृति नहीं रहती थी; क्योंकि उनका मन और उनकी बुद्धि अर्थात् उनके भाव (वृत्ति) और उनके निश्चय मुझसे (आनन्दसे) एक हो चुके थे। वे मेरे भावसे भावित थीं। भगवद्भावसे उनकी स्थिति ऐसी थी, जैसे मुनिलोग समाधिमें रहते हैं। वह केवल कृष्णाकार प्रवाहमें रहती थीं। जैसे नदियाँ अपने नाम-रूपको छोड़कर समुद्रमें प्रवेश कर जाती हैं, ऐसे ही उन्हें अपने नाम-रूप-गुण आदिसे वैराग्य हो गया और वे मुझसे एक हो गयीं अर्थात् वे मैंरूप-आनन्दरूप-कृष्णरूप हो गयीं। ऐसी स्थिति तदीक्षणसे ही हुई।

ॐ ब्रह्म सर्वम्

तदीक्षणका अनुभव

तदीक्षणमें सर्वसिद्धियोंका समावेश है। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि-

'मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभाः'। जिनकी इन्द्रियाँ वशमें हैं, जिनके श्वाँस वशमें हैं, यदि वे मेरी धारणा करते हैं, तो उनके लिए ऐसी कौन-सी सिद्धि है, जो सुदुर्लभ हो? भगवान्की धारणासे सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। तदीक्षण भगवद्धारणा ही है। संकल्पपूर्वक धारणासे सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

योगदर्शनके विभूतिपादमें कहा है- **'स्वार्थेसंयमात् पुरुषज्ञानम्'**। यदि आप दृश्यमें संयम करते हैं तो दृश्यविषयक सिद्धि प्राप्त हो जायगी। यदि आप अपनेमें संयम करते हैं अर्थात् स्वमें धारणा, ध्यान, समाधि लगाते हैं, तो चेतनका बोध हो जायगा और प्रतिभाकी प्राप्ति भी हो जायगी अर्थात् प्रातिभज्ञानका उदय हो जायगा।

तदीक्षण भगवद्धारणा ही है। यह ऐसी भगवद्धारणा है; जिसमें प्रत्याहार, तत्परता स्वतः आ जाते हैं। जब सर्वत्र भगवद्भाव करते हैं, तो तत्काल शान्तिका अनुभव होता है; क्योंकि तदीक्षणमें आनन्दकी भावना होती है। भगवान् आनन्दस्वरूप हैं, उसकी भावनासे तत्काल आनन्दानुभव ही होगा। सर्वत्र भगवद्भावसे ब्रह्मबुद्धि दृढ़ हो जायगी अर्थात् यह निश्चय हो जायगा कि सब परमात्मा है। सद्भावनासे

सत्क्रिया और सत्निश्चय होगा और निश्चयसे सत्-साक्षात्कार हो जायगा। जब भावना अर्थात् दृष्टि भगवन्मयी हो जायगी, तो जो दीखेगा, वह आनन्दमय होगा और जो देखेगा, वह भी आनन्दमय हो जायगा। कुछ समय बाद हमारा आनन्द-निश्चय हमारी आनन्द-बुद्धि सुदृढ़ हो जायगी और हमें अद्वय स्वयंताका अनुभव होकर उसमें प्रतिष्ठा-निष्ठा हो जायगी।

महावाक्यके श्रवणसे तत्त्वज्ञान होता है-ऐसा वेदान्ती मानते हैं। वे यह मानते हैं कि **'तत्त्वमसि'** महावाक्यसे अविद्याकी, अज्ञानकी निवृत्ति होती है। एक प्रक्रिया यह भी है कि संकल्पसे अविद्याकी निवृत्ति होती है। जैसे, सोनेसे पूर्व उठनेके निश्चित समयका संकल्प कर लेते हैं। उस अविद्याकी स्थितिमें हमारे पास कोई साधन नहीं है। उससमय ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो हमें हमारे निश्चित समयपर उठा

देती है। अविद्यासे जाग्रत किसने किया? संकल्पने। संकल्प हमें बोध करवा देता है। तदीक्षणमें हम यह स्वीकार करते हैं कि परमात्मा सब हैं; इसलिए परमात्माको ही देखो, परमात्माका ही अनुभव करो। जब पहले यह स्वीकृति देंगे कि मैं ही परमात्मा है, तो यह स्वीकृति संकल्प बन जायगी। यह संकल्प अद्वयबोध करानेसे पूर्व अस्त नहीं होगा अर्थात् संकल्प अद्वयबोधकी परिस्थिति व वृत्तिको व्यक्त अवश्य करेगा। जाग्रदावस्थामें भी संकल्प ही अविद्याकी भ्रान्तिको निवृत्त करेगा। संकल्प ही स्वप्न व सुषुप्तिसे जगाता है और अविद्याको निवृत्तकरके जाग्रदावस्थामें लाता है। तीनों अवस्थाओंसे तथा अविद्यासे मुक्त करनेकी सामर्थ्य संकल्पमें होती है।

तदीक्षणकी यह विशेषता है कि अपनेमें ब्रह्मभाव या भगवद्भाव हुए बिना प्रतीतिमें

ब्रह्मभाव नहीं हो सकता। **'ब्रह्म सर्वम्'** अर्थात् परमात्मा ही सब है। सब अर्थात् यह, वह और मैं। अतः परमात्मा ही यह है, परमात्मा ही वह है और परमात्मा ही मैं है। सर्वमें स्थूल, सूक्ष्म, कारण भी आता है। ब्रह्म ही त्रिपुटीके रूपमें है- यह स्वीकृति दे देनेपर ब्रह्मभावना सहज होने लगती है और उससे अन्तःकरणकी शुद्धि हो ही जाती है। तदीक्षणसे प्रत्यक् ब्रह्ममें स्थिति हो जाती है। इसे श्रुति व युक्तिपूर्वक विचारकरके समझ लेना चाहिए। जैसे, टेलीविजनमें जो कुछ भी दीखता है, चाहे वह अच्छा है या बुरा है- वह सब प्रकाश रूप ही होता है। उसमें एक व्यक्ति तदीक्षण करता है अर्थात् सबको व अपनेको प्रकाशरूप देखता है। टेलीविजनके चित्रोंका आधार प्रकाश ही है। वह व्यक्ति बार-बार सबको प्रकाशरूप देखनेसे स्वयं प्रकाशरूप हो जायगा; क्योंकि स्वयं प्रकाशरूप

होकर ही सबको प्रकाशरूप देखेगा। उसकी स्वीकृति यही है कि मैं प्रकाश हूँ और सब प्रकाश हैं। ऐसा संकल्प ही बोध करा देगा; अर्थात् प्रकाशाकारवृत्तिका उदय हो जायगा और उसकी प्रकाश-संवित् भी बन जायगी।

ऐसा साधन दुर्लभ है, जिसमें अपना भी भला हो और सबका भी भला हो। दूसरेमें तदीक्षण करनेपर, उसके अन्तःकरणके संस्कार उससमय बाधित हो जाते हैं और उसकी आकृति भी बाधित हो जाती है। साथ ही साथ उस आकृतिके जितने भी गुण-दोष हैं, वे भी बाधित हो जाते हैं। जिसमें तदीक्षण किया जा रहा है, वह परमात्मा हो जाता है। अतः उसका भाव परिवर्तित हो जायगा। अपनेमें तदीक्षण करनेपर अपनी मनोवृत्तियाँ बदल जायँगी। भगवद्भावसे प्रभावित होकर अपनी व दूसरेकी भी पुरानी विकृतस्थिति गौण हो जायगी। इसमें अपना भी

हित है और जिसमें भगवद्भाव हो रहा है, उसका भी हित है। जो हम चाहते हैं, जो हमारा अभीष्ट है, तदर्थ संकल्प लगानेसे उसकी प्राप्ति हो जायगी। जो हम हटाना या निवृत्त करना चाहते हैं, उसके लिए वैसा संकल्प कर लें, तो वह निवृत्त हो जायगा; क्योंकि परमात्मा कल्पवृक्ष है, उसके समक्ष जो भी प्रार्थना या भावना या संकल्प करते हैं, वे उसे आकृति दे देते हैं।

तदीक्षणकी एक विशेषता यह है कि तदीक्षणसे अहंकारकी परिच्छिन्नता अर्थात् 'मैं देहमें आबद्ध हूँ, देश-कालमें सीमित हूँ'- ऐसी परिच्छिन्नताकी कल्पना टूटने लगती है। तदीक्षणमें अपरिच्छिन्नभाव, अनन्तभाव होता है। तदीक्षणमें परमात्माको अपनेसे भिन्न अनुभव नहीं किया जाता और किसी दूसरेको भी परमात्मासे भिन्न अनुभव नहीं किया जाता। तदीक्षणमें व्यापकता और बृहत्ताकी भावना बनती है। इसमें बोध

होनेसे पूर्व बृहदाकारवृत्ति बनती है; जो बोधका हेतु बन जायगी।

स्वप्नके दृष्टान्तसे भी समझ सकते हैं। स्वप्नमें जो कुछ भी दीखता है, वह क्या होता है? स्वप्नमें जो देखता है, वह कौन होता है? जिस प्रकाशमें स्वप्न दीखता है, वह क्या होता है? स्वप्नमें ऐसा कौन-सा प्रकाश है; जिससे पूरा स्वप्न प्रकाशित होता है? जाग्रदावस्थाके जो प्रकाशक सूर्यादि माने जाते हैं, वे भी स्वप्नमें प्रकाशित होते हैं। स्वप्नमें जो कुछ भी दीख रहा है और जो देख रहा है, वह कौन है? इसपर विचार करना चाहिए और अपने जीवनके अनुभवसे निर्णय करना चाहिए। जो कुछ भी है, चेतन ही है और वही उन सब रूपोंमें बना हुआ है। जैसे, टेलीविजनमें प्रकाश ही सब रूपोंमें बना हुआ है, सब चित्रोंकी पृथक्ताके रूपमें भी प्रकाश ही है। कम प्रकाश और

अधिक प्रकाशमें ही सारे चित्र दीख रहे हैं। ठीक इसीप्रकार स्वप्नके सारे दृश्योंका उपादान कारण कौन है? सारी प्रातिभासिकताका उपादान कारण कौन है? चेतन अर्थात् मैं है। स्वप्नमें मेरी कल्पना ही मुझे दीखती है और वह मेरी कल्पना मुझसे पृथक् होती नहीं। सब परमात्मा है- इसको समझनेके लिए शास्त्रीय दृष्टान्त है- स्वप्न और लौकिक दृष्टान्त है- टेलीविजन।

ॐ ब्रह्म सर्वम्

तदीक्षणके लिए आत्मविचार

सिद्ध अभेदमें द्वैत या विवेकका स्पर्श भी नहीं है। विचार तो द्वैतमें ही होता है। विवेकमें या द्वैतमें, देरी-दूरी-भिन्नताको स्वीकृति मिल जाती है। इसी कारणसे मन नहीं लगता। मन लगानेकी, मनोनिरोधकी, वासनाक्षयकी समस्यामें ही सारा समय बीत जाता है। असंयममें तो वासनाकी परम्परा रहती है और जीवन दुःख-सुखके प्रवाहमें बीतता है- जो द्वैतका प्रसाद है। जब द्वैत-बुद्धि रहेगी, तो मनको इधरसे उधर और कभी उधरसे इधर लगाना पड़ता है। बस, लगाते-जोड़ते रहो। न वह लगता है और न वह जुड़ता है। रमण महर्षिका एक श्लोक है-

'भावेऽहमः सर्वमिदं विभाति लयेऽहमो नैव विभाति किञ्चित्।

तस्मादहं रूपमिदं समस्तं तन्मार्गणं सर्वजयाय मार्गः॥'

जब इस मैं की प्रतीति होती है, तभी दृश्यकी प्रतीति होती है। जब मैंकी प्रतीति नहीं होती तो दृश्य भी प्रतीत नहीं होता। इसका अर्थ है कि मैं ही दृश्य है। मैंके सिवाय कोई दृश्य है भी नहीं। मैं क्या है- इसका विचार कम करो, इसे देखो। जब देखोगे, तब यह मैं सुषुप्तिशेष मिलेगा, जहाँ अद्वैत है। मन किसमें लगाओगे? जहाँ मन रहा ही नहीं। यदि मैंका अर्थ द्रष्टा है तो दृश्य रहेगा। तब वह अपनेको क्या देखेगा, वह तो देखेगा दृश्यको ही। सुषुप्तिशेष निर्विशेष है। जब हम मैंरूप परिच्छन्नभावको देखने लगते हैं, न कि सोचने या विचारने; तब सुषुप्तिशेष ही अनुभवमें आता है। उसके अनुसन्धानसे ही

सर्वका अतिक्रमण हो जाता है। सर्वके अतिक्रमणका अभिप्राय है- वासनाक्षय, मनोनाश। अपरिचित मैं ही वासना और मनके रूपमें दिखाई पड़ रहा था। जब मैं नहीं रहता, तब न वासना रहती है और न मन। इस अहंकारको जब हम दो रूपोंमें देखते हैं- एक द्रष्टा और दूसरा दृश्य। तब दृश्य एक अलग सत्य दीखता है, आसक्ति अलग वस्तु मालूम पड़ती है और आसक्ति मुझे दुःख देगी- यह विचार भी बन जाता है। 'मैं वासनावान् हूँ'- यह दृष्टि भी बन जाती है। मन नामकी एक वस्तु और खड़ी कर ली जाती है। यह झगड़ा बना ही रहेगा। मन कभी वासनासे जुड़ेगा और कभी आत्मा से जुड़ेगा । यही काम सारी जिन्दगी करते रहना पड़ेगा।

अंहकारको स्वीकृति मिलते ही सर्वकी प्रतीति अनायास होती है। मैं ही सर्व है। **'वासुदेवः**

सर्वम्', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'भावेऽहमः सर्वमिदं विभाति-०' से भी यह बात स्पष्ट हो गयी कि मैं ही सर्व है। इसमें मैं क्या है? निर्विशेष आनन्द। सुषुप्तिमें मैं आनन्दरूप ही होता है। सर्व माने अनुभाव्यता। अद्वैतको स्वीकार न करनेपर ही विवेकका लम्बा मार्ग दिखाई पड़ने लगेगा और संघर्षमें लगना होगा। इसी विवेकाभासके कारण ज्ञान और आचरणमें, अनुशासन और अनुसरणमें भिन्नताकी पीड़ा बनी रहती है। मन न लगनेकी स्थिति विविक्तमें और विविच्यमें समानरूपसे ही है। न विविक्तमें मन लगेगा और न विविच्यमें। एक दुःख और एक सुख। तब मन किसमें लगेगा- न इधर और न उधर। द्वैतमें तो भटकाव है। भ्रमका उदय, विलय चलता रहेगा। ऐसी स्थितिमें मैं की निर्विकारताको स्वीकृति मिल नहीं सकती। विकार का अर्थ है- मैंका हमेशा अन्यथारूपमें बदलते रहना।

यह संवित् कब बनेगी कि 'मैं एक रस है।' जो अन्यथारूपमें कभी बदलता ही नहीं। लोगोंकी तो मैंके प्रति यही स्वीकृति है कि मैं रागी हूँ, मैं द्वेषी हूँ; परन्तु मैं रागी या द्वेषी नहीं होता। मैंको रागकी या द्वेषकी प्रतीति होती है, फिर उसकी अप्रतीति हो जाती है। परिच्छिन्न मैं ही राग-द्वेष बनता है। यह परिच्छिन्न कौन है- इधर ध्यान देते ही परिच्छिन्नता ही गायब हो जाती है। इसप्रकारका अनुसन्धान करोगे तो तुम्हें सही दिखाई पड़ेगा, अन्यथा तो विवेक करते रहो, कुछ होनेवाला नहीं है।

स्वीकृति आत्मस्वातन्त्र्य है। विवेक अंहकार का जनक है। हालाँकि विवेक अहंकारको थोड़ा-सा शिथिल भी कर सकता है। योगवासिष्ठमें एक उदाहरण कट, व्याल, दम का दिया गया है। जैसे ही उनमें दृश्य-विवेकका उदय हुआ कि अहंकार व्यक्त

हो गया और वे नष्ट हो गये। सुषुप्तिमें विवेक नहीं होता। वहाँ अद्वैत-स्थिति है। वहाँ कुछ नहीं होता। वहाँ अंहकार नहीं होता और अंहकारका विषय भी नहीं। सुषुप्तिमें जो अप्रतीति होती है, वही अप्रतीति अब अहंकार और अहंकारके विषयके रूपमें दीख रही है। इसका मतलब है कि प्रतीति नहीं है; क्योंकि वहाँ नहीं थी; इसलिए अब भी नहीं है। जो वहाँ नहीं था, वह अब भी नहीं है। जो वहाँ था, वही मैं अब हूँ।

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति॥

(कठोपनिषद् २/१/१०)

जो यहाँ है, वही वहाँ है। जो जाग्रदावस्थामें है, वही सुषुप्ति अवस्थामें है। जो सुषुप्ति अवस्थामें है, वही जाग्रदावस्थामें है। जो तुम यह सोचते हो कि मैं रागी हूँ, मुझसे असंयम होता है, मेरा निदिध्यासन आज ठीक

हुआ और आज ठीक नहीं हुआ- यह अंहकार कबतक बनाये रखोगे? यह अंहकारका खेल है या अंहकारके अधिष्ठानका। जिसको दृश्य दीख रहा है, वही अंहकार है, तब द्वैत हो गया। जो भी दृश्य दीख रहा है वह परिच्छिन्न अंहकार ही दीख रहा है। बस, यह देखो कि अंहकार वस्तुतः क्या है? यह ब्रह्म है। यह बात सुषुप्तिसे पता लग जाती है।

अनुभवके आधारपर देखो, विचारके आधारपर नहीं। गहरी नींदमे तुम और हम सब एक हो जाते हैं। यह याद दिला रहा हूँ, न कि विवेक कर रहा हूँ। जब तुम द्वैतमें ऐसा देखते हो तो तुम्हें विवेक ही दिखाई पड़ता है। गहरी नींदमें तुम और हम एक होते हैं। यहाँ भी वही देखो कि सब हमसे पृथक् नहीं हैं। तब तुम्हें वास्तविकताका अनुभव हो जायगा। देखो, शरीरसे, इन्द्रियोंसे जो भी ग्रहण हो रहा है, जो भी

व्यवहार्य है, अन्तःकरणसे जो भी ग्रहण हो रहा है, उन सब रूपोंमें अर्थात् आकारमें, विचारमें, अंहकारमें, भेदमें अपने लक्ष्यकी भावना करो। इन सब रूपोंमें अपना आनन्दस्वरूप ही व्यक्त है- ऐसी भावना करो। तदीक्षणकी साधना अद्वैतकी साधना है। यह वस्तु-सत्यके अनुरूप है। विवर्त शब्दका अर्थ है- विपरीतरूपसे अभिव्यक्ति। यह विवेकसे प्राप्त अर्थ है। तदीक्षण साधनामें विवर्तका अर्थ है- विशेष अभिव्यक्ति। इस साधनामें व्यक्त होनेवाली वस्तुपर दृष्टि है। विवर्तमें मुख्यरूपसे प्रतीतिपर दृष्टि रहती है। विवर्तवादका प्रयोजन है- प्रतीतिसे वैराग्य, जगत्की दुःखरूपताका प्रतिपादन और अद्वैततत्त्वकी जिज्ञासा। वैराग्यकी अभिमुखता समताकी ओर होनी चाहिए, तभी उत्तम वैराग्य माना जायगा, जो कि **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** की भावनासे ही हो सकता है। दूरदर्शनमें आपने

प्रकाशको खेलते हुए देखा होगा। सृष्टि-स्थिति-प्रलय- ये तीनों एकसाथ उपलब्ध होते हैं। शेष भी वह स्वयं ही रहता है। प्रकाशकी सर्वभवन सामर्थ्य, प्रकाशकी सिद्ध असंगता और प्रकाशके खेलका मिथ्यात्व- ये सब स्पष्ट होते हैं। विचित्रताका प्रकाशपर कोई प्रभाव नहीं देखा जाता।

तदीक्षणके प्रभावोंका भी अनुभव करते रहना चाहिए। अद्वयता, आनन्द, असंगताको व्यक्त करनेमें तदीक्षण अचूक है। गोपियोंकी यही साधना थी, इसीसे वे पूर्णतातक, अपनी ब्रह्मतातक पहुँच गयीं और सब उपाधियोंसे छूट गयीं। **तदीक्षणका मुख्य कार्य है- द्वैत-प्रतीतिको गौण करना।** इसके बाद द्वैत-भ्रमके मिथ्यात्व निश्चयमें उसका प्रयोग होता है। द्वैत केवल प्रतीति है, भ्रान्ति है; वस्तु नहीं। तदीक्षण विघ्नोंसे बचानेके लिए कवच

है। वह अंहकारसे, विकारोंसे, आकारोंसे, विषमताओंसे रक्षा करता है। इसमें निषेध्यकी अप्रतीति और लक्ष्य मैं की भावना- दोनों एक साथ सम्पन्न होती हैं।

शुद्ध वस्तुमें विषयकी प्रतीति अशुद्धि है। अतः विषयमें तदीक्षणसे अन्तस्की शुद्धि होती है। विषयीमें तदीक्षणसे सूक्ष्मकी शुद्धि होती है और विघ्नोंकी निवृत्ति होती है। वृत्तिमें तदीक्षणसे संयमसिद्धि सम्पन्न होती है। कारणकी शुद्धि तो तदीक्षणके संकल्पकी भावना करनेसे होती है। सत्यको पहचाननेमें जो आवरण है, उसके भंग करनेमें तदीक्षण अचूक सहायक है। इससे वृत्ति सूक्ष्म हो जाती है; जिससे भूत-भविष्य भी पकड़में आने लगता है। दुःखादिमें तदीक्षण करनेसे व्यक्ति निर्द्वन्द्व व निर्भय होने लगता है। तदीक्षण होता है- सत्यानुसारी। सत्यात्मक प्रत्ययोंके द्वारा। शास्त्र व सन्तके आदेशसे प्राप्त सर्वत्र

भगवद्भाव ही तदीक्षण है। जो भी अनुभाव्य है, वह मुझमें प्रतीत होता है। प्रतीतिकी रेखाएँ हटते ही, उनका निषेध करते ही मैं शेष रहता हूँ। देहमें व देहके बाहर जो ठोसपना हमें प्रतीत होता है, वह देहमें स्थित मैंके कारण होता है अथवा ऐसा भी कह सकते हैं कि अहंकारपर दृष्टि रहनेके कारण होता है।

सत्यवस्तु तो केवल आत्मा ही है, मैं ही है। दीखता सब अपनेमें है। संस्कारका निषेध होते ही वृत्ति आत्माकार रह जाती है। यही तदीक्षणकी महिमा है। देहोपाधिके कारण तदीक्षण और अन्तःतदीक्षण- ऐसा विभागकरके इसकी साधना की जाती है। दृश्यमें भी और द्रष्टामें भी- दोनोंमें तदीक्षणका प्रयोग करना चाहिए; जिससे ईक्षणकी और तत्‌की एकता हो जाय। जो वस्तु सर्वरूपमें हो, सर्वकालमें हो, सर्वदेशमें हो, असर्व हो, अकाल-अदेश हो, उसे हम

सत्य कहते हैं। इसे अनुभव करनेकी श्रेष्ठ युक्ति है- तदीक्षण अर्थात् सर्वत्र भगवद्भाव। इसलिए एकरस जीवनके लिए अपरिवर्तनशील वस्तुपर ध्यान देना होगा। चाहे लगातार दो, चाहे रुक-रुककर दो। असत्य या अनात्माकी प्रतीतिके लिए ही कुछ करना, बोलना होता है। सत्यके साक्षात्कार या उपलब्धिके लिए केवल सत्यानुसारी दृष्टि अर्थात् तदीक्षण पर्याप्त है। कमरेके आकाशको क्या-क्या उपाय करने होंगे; जिससे वह महाकाश हो जाय? इसपर मननकरके निदिध्यासन करें तो अनुभव हो जायगा कि दीवारें मुझमें प्रकाशित हैं और वे मैं ही हूँ। अनन्तता केवल स्वयंमें ही प्रतिष्ठित होती है। वृत्तिकी गतिके कारण, संकल्पके कारण निर्विशेष चेतन ही अनुभविता-अनुभाव्य, दृश्य, क्रिया, प्रक्रिया आदिके रूपमें दिखाई पड़ता रहता है और ठोसपनेकी भ्रान्ति, अनेकताकी भ्रान्ति,

भ्रान्तिके संस्कार तथा वृत्ति निर्मित करता रहता है।

संकल्प होते ही चेतन तदनुसार त्रिपुटी-रूपमें उपलब्ध होने लगता है। जैसे आत्मध्यानसे कर्त्ता, कर्म, क्रिया, विषय अस्त हो जाते हैं; वैसे ही भगवद्भावसे भी ये सब अस्त होते हैं। तदीक्षण अविस्मृतिका उत्तम साधन है। इसलिए तदीक्षणका निश्चय करो। उसके सिद्धान्तको स्वीकृति दो। फिर उसका ध्यान करो। श्रद्धामें भावना होती ही है। श्रद्धासे अनुभव होता है। यह सर्व तत्का ईक्षण है। यद्यपि यह श्रुतिका अध्यारोप है और **'भावेऽहमः-०'** के अन्तर्गत है। दृष्टि-सृष्टि तथ्य है। **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'**, **'अहमेवेदं सर्वम्'** से यही तथ्य स्पष्ट हो रहा है।

सर्व चाहे अधिभूतरूप हो, चाहे अधिदैव- रूप हो या अध्यात्म हो, वह

'अतोऽन्यदार्तम्' ही है। प्रातीतिक सर्वमें विविधताके, श्रेष्ठ-कनिष्ठताके, हेयोपादेयताके विचार व्यर्थ हैं। शक्ति, सिद्धि, चमत्कार, उचित-अनुचित तथा प्रभाव- ये सब आर्त ही हैं। टेलीविजनमें सबप्रकारके दृश्य, भाव, प्रभाव, अभाव, स्वभाव- सब एक-जैसे हैं। वे रूपतः आर्त हैं और स्वरूपतः प्रकाश हैं। यह पुण्य है, यह पाप है, इसका फल सुख है या प्रतिकूलता है- सब **'भावेऽहमः सर्वमिदं विभाति-०'** के विचारके अन्तर्गत आ जाता है। संकल्प-शक्तिके विलासोंको ही सर्व और परिवर्तनशीलता माना गया है। संकल्प जो भी परिवर्तन करेगा, वह भी आर्त ही है या यह कहो कि प्रकाश ही है।

सत्तासामान्यपर ध्यान देना चाहिए, न कि विशेषतापर या विशेष प्रभावोंपर। धोखा सर्वका रूप है। कृतघ्नता, सद्भाव, हित, कपट, झूठ- ये सर्वके रूप हैं। इनके फलोंपर ध्यान

देना मिथ्या है, अनात्मचिन्तन है अर्थात् सत्तासामान्यसे दूर होना है। जैसा संकल्प, वैसी प्रतीति, वैसा प्रभाव और वैसा ही प्रलय। जो होना है, पूर्व संकल्पसे वैसा होता रहता है, उसका अध्ययन करो। उसमें परिवर्तनका संकल्प और प्रयास आर्त है, प्रकाश है। कोई समझदार, कोई सन्त, कोई दुष्ट- ये सब सर्वके ही प्रकार हैं। इनमें कुछ विशेषता नहीं है। कोई प्रकाशमूर्ति यशस्वी है, कोई प्रकाशमूर्ति तिरस्कृत है, कोई प्रकाशमूर्ति रोगी है, कोई सतानेवाली है, कोई सताई जाने वाली है- सब सम हैं। जिसका जैसा संकल्प या दृष्टि है, जिसकी जैसी वृत्ति, समझ या अभ्यास है, उसे वैसा ही प्रतीत हो रहा है। ठीक-गलत कुछ नहीं है। सब चल रहा है। व्यक्ति कार्य-कारण खोज रहा है। चेतनमें, अकारणमें, अनिर्वचनीयमें, मिथ्यामें किसलिए खोज रहा है? जिसके जीवनमें जो होना था,

वह हुआ। जो होना है, वही होगा। जो नहीं होना है, नहीं होगा। पूर्ण शरणागति उपलब्ध है, पूर्ण उपरामता उपलब्ध है, पूर्ण साक्षित्व उपलब्ध है। पूर्णता ही पूर्णता है, ब्रह्मता ही ब्रह्मता है।

प्रत्येक सकामी व्यक्तिको तप करना पड़ता है। श्रीविष्णुने देवताओंको यही कहा था कि कालकी प्रतीक्षा करो। शरणागतोंको भी यही उत्तर दिया गया था और स्वयं 'स' को भी **'तपोऽतप्यत्'** अर्थात् तप तपना पड़ा। आप भी तदीक्षणरूप तपमें लग जाओ। **'यो वै भूमा तत्सुखम्', 'यत्र नान्यत् विजानाति', 'रसो वै सः'**, इसे परोक्षरूपसे या साक्षादपरोक्षरूपसे अनुभव करनेमें लग जाओ। **'आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते-०'** (तैत्तिरीय०)- इस श्रुतिका तात्पर्य निरहं सुषुप्तिशेषमें ही है। अद्वयतामें ही वास्तविक निरहंता है। सत्तासामान्य अकाल अस्तित्व है। अकाल अस्तित्व ही सत्

है। सर्वाधिष्ठान वस्तु ही सत् है, जो अलुप्त है, प्रकाशमात्र है, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयकी त्रिपुटीसे मुक्त चेतन है। जो निरन्तर जान रहा है- निर्विशेषरूपसे। अनन्त, बृहत्, अपरिच्छिन्न पूर्ण वस्तु निर्विशेष मैं ही है। जो वस्तु यह-वहके स्फुरणसे, स्पर्शसे सर्वथा असंग है, वही मैं है।

'सर्वं ह्येतद् ब्रह्म' (माण्डूक्य०)में सर्व अवस्तु है, **अतोऽन्यदार्तम्** है, **'अन्यावाचो विमुञ्चथ'** है, **'किमिच्छन् कस्य कामाय-०'** है, **नेति-नेति** है अर्थात् सर्व है ही नहीं।

न यत् पुरस्तादुत यन्न पश्चा-
न्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम्।
भूतं प्रसिद्धं च परेण यद् यत्
तदेव तत् स्यादिति मे मनीषा॥

(भाग० ११/२८/२१)

किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत्।

वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च॥
(भाग० ११/२८/४)
'सर्वतो उपरमेत्'। अभये भयदर्शिनः। इन सबपर विचारकरके तदीक्षणके निश्चयमें, उसकी साधनामें, उसके प्रयोगमें तत्पर हो जाओ।

ॐ ब्रह्म सर्वम्

अन्तःतदीक्षण

अन्तःतदीक्षणकी मूल भूमिका है- सजगता। कोई संवेदन, दर्द, खुजली या कोई प्रतीति, कोई दुःख, राग, द्वेष, लोभ, मोह, क्रोध या कोई स्मृति महसूस हो रही हो; तो आप सजगतापूर्वक उन आकारों-विचारोंमें तदीक्षण करो। जैसे ही आपको स्मृति आयेगी कि मुझे तदीक्षण करना है, तभी वे आकार, संवेदन, विचार लुप्त हो जायँगे। उनके लुप्त होनेपर भी वहाँ भगवद्भावका अनुभव करना है। आपको भगवान्की मुस्कुराहटका अनुभव जरूर करना

है। तदीक्षणमें अंहकार भगवदाकार होता है; परन्तु भ्रम यह होता है कि हम सामने वालेमें भगवान् देख रहे हैं। मुस्कुराते हुए भगवान् हम बन रहे हैं; इसलिए सामने भी वही दीखते हैं।

तदीक्षणमें लक्ष्यका सर्वत्र अनुभव करना है। अन्तःतदीक्षणसे स्वप्न, मनोराज्य समाप्त हो जायँगे। आपको जाग्रत्-सुषुप्ति प्राप्त होगी। कुछ दिनोंमें बोध भी हो जायगा। स्वप्नमें, मनोराज्यमें तदीक्षण करनेको अन्तःतदीक्षण कहते हैं। जाग्रति, होश हर साधनका मूल है। यदि विचारोंके प्रवाहमें बह गये; तो भी संकल्प ही तदीक्षणकी याद दिलाता है। संकल्प जाग्रत करता है। अतः उसका आदरकरके जाग्रत हो जाइये; तो जाग्रति बढ़ती जायगी। जाग्रतिका पर्यवसान निदिध्यासनमें है। स्थूल जगत् व सूक्ष्म मनोराज्यसे छुटकारा पानेकी यही युक्ति है।

यह साधन नेति-नेतिका नहीं है। यह

ओमिति-ओमितिकी प्रक्रियामें है। सबजगह हमें भगवद्भाव करना है, केवल विचारकरके निषेध नहीं करना है। निषेध करनेमें, जिसका निषेध करना है, वह अन्तर्मन (Sub-concious mind) में बना रहता है। भगवदाकार होते-होते व्यक्ति स्वरूपाकार हो जाता है। भगवदाकारवृत्ति बार-बार करनेसे वह वृत्ति सिद्ध हो जायगी। शुरुमें तो कुछ प्रयास करना पड़ता है, बादमें तो स्मरणमात्रसे भगवान्की उपस्थिति हो जायगी। जिसे हटाना चाहोगे, वह हट जायगा। जिस रोग, शोक, विकार, प्रतिकूल परिस्थिति, भ्रान्तिको हटाना चाहो, उसे हटा सकते हो।

भगवदाकारवृत्तिसे रोग, शोक, भ्रम आदि स्थगित किये जा सकते हैं और ब्रह्माकारवृत्तिसे ये मिट जायँगे। स्वरूपस्थिति प्राप्त करनेपर सबका प्रलय सहज ही हो जायगा। मिथ्यात्वदृष्टिसे सारा जगत् स्वप्नवत् हो जायगा।

किसीके अस्तित्वको स्वीकार न करना भी प्रलय ही है। अन्तःतदीक्षण एक ऐसी सिद्धि है, जो आपके मानसिक विषयों- राग, द्वेष, गुण, दोषोंसे मुक्ति दिलवा सकती है।

सूक्ष्मतामें तदीक्षण करनेसे समता आ जाती है। इससे वृत्तियोंका उत्थान बन्द हो जायगा। जब हम जाग्रत होकर संवेदनमें तदीक्षण करेंगे, तो संवेदन होना बन्द हो जायगा और कोई भी सूक्ष्म आहट पाते ही तदीक्षण करने लग जायँगे। किसीप्रकारका संवेदन होनेपर उसमें तदीक्षण करनेसे वह हट जायगा और एक निराकारता आ जायगी। अन्तःतदीक्षणसे विचार या संवेदन शान्त होनेके बाद निवृत्ति, निराकारस्थिति अर्थात् सन्धिस्थान आ जायगा। अन्तःतदीक्षणसे मनोराज्यपर नियन्त्रण हो जायगा, स्वप्न कम हो जायँगे तथा स्वप्न आते ही उसमें तदीक्षण होने लगेगा, जिससे स्वप्न भंग हो जायगा। व्यक्ति

जाग्रतिमें ही जीने लगेगा।

विधि- अन्तःतदीक्षणमें पहरेदारकी तरह सजग होकर बैठना होता है। जैसे ही कोई विचार आए; तुरन्त उसमें तदीक्षण किया जाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध सम्बन्धी कोई भी विचार, खुजली या संवेदन हो; तुरन्त उस विचारमें तदीक्षण करना चाहिए। शरीरमें कोई भी क्रिया होनेसे पहले, उस क्रियाके विचारमें तदीक्षण करना चाहिए। खयालोंपर विजय पानेकी इस युक्तिको सीख लेना चाहिए। इससे जाग्रति पुष्ट होती है।

मानसिक विकारों और भावोंमें तदीक्षण करनेके पश्चात् तदीक्षण करने वाले अहंकारमें भी तदीक्षण करना चाहिए। प्रतीति या अनुभाव्यमें तदीक्षण सीख लेनेके पश्चात् अनुभवितामें तदीक्षण किया जाता है। दृष्टिमें और द्रष्टामें तदीक्षण करनेसे ही तदीक्षण सिद्ध हो जाता है और तब

तदीक्षणकी युक्ति पूर्ण मानी जाती है। अनुभवितामें तदीक्षण करनेसे सम्पूर्ण वृत्तियाँ प्रत्यक्‌की ओर लौटने लगती हैं और पराक्‌की ओर वृत्तियोंका उदय व प्रवाह शिथिल हो जाता है। अनुभवितामें तदीक्षण कैवल्यताका अनुभव कराता है, अद्वैतके अभिमुख हो जाता है और तब न अनुभाव्य, न अनुभविता अर्थात् अद्वैत-संवित्‌का उदय हो जाता है। तदीक्षण करने वाला और जिसमें तदीक्षण किया जाता है, वे दोनों एक अनुभवमें आते हैं। यह साधन अद्वैतके अनुरूप है।

जब हम किसी प्रिय वस्तुमें तदीक्षण करते हैं, तो वृत्ति अपनी ओर प्रवाहित होकर ठहरने लगती है। ऐसा अनुभव होने लगता है तथा ऐसी संवित् बनने लगती है कि वह मैं हूँ। लक्ष्यका तदीक्षण करनेसे यही अनुभवमें आयेगा कि लक्ष्य मैं हूँ। साकारमें भी यही घटना घटित होगी कि वह साकार ईश्वर मैं हूँ। जैसे, हम

अपनी आँखकी ओर देखने लगे, आँखका अनुभव करने लगे, तो तत्क्षण दृश्यसे ध्यान हट जाता है। इसीप्रकार अनुभवितामें तदीक्षण करनेपर अंहकारके मूलकी ओर ध्यान चला जाता है और ध्यान ठहरने लगता है अर्थात् अस्तित्वमात्र स्थिति बन जाती है।

सूक्ष्म और कारणमें भगवद्भाव करना अन्तःतदीक्षण है। स्थूल शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धमें भगवद्भाव करना तदीक्षण है। पूरी प्रकृति परमात्मा है अर्थात् परमात्मा ही पूरी प्रकृतिके रूपमें उपस्थित है। प्रकृतिमें स्थूल, सूक्ष्म, कारण होते हैं, प्रकृति स्थूल, सूक्ष्म, कारणरूपा होती है। तदीक्षण और अन्तःतदीक्षणमें प्रकृतिको चेतन अनुभव करना होता है। पहले अध्यारोपित अनुभव, पश्चात् वास्तविकताका अनुभव हो जाता है। शास्त्रोंकी यह अद्भुत प्रक्रिया है, यह युक्ति है।

लोगोंको निषेध करनेका अभ्यास है और वह बिना अहंकारके होता भी नहीं। ओमिति प्रक्रिया दृश्य, द्रष्टा और दृष्टिमें परमात्माका अनुभव कराती है। प्रारम्भमें आँख बन्दकरके शान्त बैठ जाइये, सावधान रहिए। कोई भी संवेदन हो, तो उसमें भगवद्भाव कीजिए और यह संकल्प भी कीजिए कि 'जब भी कोई विचार आयेगा, तो मैं तदीक्षण करूँगा'-यह संकल्प आपकी पूरी सहायता करता रहेगा। अन्तःतदीक्षणमें यह विचार नहीं किया जाता कि संवेदनोंका कारण क्या है? विचारोंका उदय कहाँसे होता है? विचारोंका लय कहाँ होता है? वह अलग प्रक्रिया है।

अन्तःतदीक्षणमें पहलेसे ही यह स्वीकार किया जाता है कि प्रकृति और प्राकृत सबकुछ परमात्मा है। यह अध्यारोप सत्यानुसारी होनेसे निरापद है। विलक्षणता यह है कि भगवद्भावका

अध्यारोप करनेसे अनुभाव्य, प्रतीति तथा दृश्यका तत्काल अपवाद हो जाता है। अनुभविता-द्रष्टामें भगद्भाव करनेपर उस अध्यारोपका भी अपवाद हो जाता है। शेष रहती है जिज्ञासा और सावधानी। अन्तःतदीक्षणमें जाग्रतिकी विशेषता है और विचारोंको शान्त करनेकी योग्यता भी। विचारोंका प्रवाह, व्यर्थ विचारोंका आक्रमण, सम्यक् विचारोंका विकल्प इसीसे तत्काल शान्त होते हैं। इससे जीवन आनन्दमय होने लगता है। स्वप्न अल्प हो जाते हैं और सुषुप्तिकी प्राप्ति सुलभ हो जाती है। ऐसा होनेपर जीवन सुखमय, शरीर निरामय और व्यवहार सद्भावपूर्ण होने लगता है। व्यर्थ विचारके आनेसे ही निद्रामें बाधा पड़ती है और स्वप्न बढ़ जाते हैं। परन्तु अन्तःतदीक्षणसे ध्यानकी स्थिति बनने लगती है। यह एक दुर्लभ साधन है। विकल्पोंकी शान्तिके कारण जीवनमें दृढ़ता और स्थिति बनने लगती

है।

अन्तःतदीक्षण तत्क्षण लय और विक्षेपका निवारक है, कालान्तरमें नहीं। ऐसी स्थितिमें भगवदाकारवृत्ति, लक्ष्याकारवृत्ति, आत्माकार-वृत्तिको प्रवाहरूपसे एकाकारवृत्ति बनाना सरल हो जाता है। यहींसे सम्पूर्ण सिद्धियोंका उदय होता है। जाग्रतिसे विचार शान्त रहते हैं। इस प्रक्रियामें जाग्रति अनायास ही उपलब्ध रहती है और जहाँ पहुँचना है, उसका भाव बना रहता है। वस्तुस्थिति यह है कि जो विचार, आकार, विकार या विकल्प आते हैं, वे वास्तवमें हम ही होते हैं और हम ही तदीक्षण करते हैं।

इस प्रक्रियामें विचारादि तो शान्त हो ही जाते हैं और तदीक्षण भी शान्त हो जाता है। शेष रहती है वस्तुस्थिति। यदि विचार आ रहे हों, तो यह मान लेना चाहिए कि हम अभी असावधान हैं और अपने संकल्पका आदर नहीं

कर रहे हैं।

अन्तःतदीक्षणसे विचारोंके साथ, विकारोंके साथ, विकल्पोंके साथ संघर्ष नहीं करना पड़ता। बस, आप आन्तरिक स्फुरणमें तत्काल तदीक्षण करें। जिसप्रकार तदीक्षणमें सर्वत्र परमात्माका अनुभव करना होता है; इसीप्रकार अन्तःतदीक्षणमें समस्त सूक्ष्म और कारणके प्रति भगवद्भाव करना होता है। आप अन्तःतदीक्षण करनेका संकल्प लीजिए और इस अद्भुत प्रक्रियाको प्रारम्भ कीजिए। आपको विलक्षण-विलक्षण अनुभव होंगे। संकल्पके चमत्कारको भी स्वीकार कीजिए। संकल्पशक्ति अद्भुत है। अज्ञानकी अवस्थासे, निद्राकी अवस्थासे, असावधानीसे भी व्यक्तिको जाग्रत करनेवाला यदि कोई प्रत्यय है, तो वह संकल्प है। जहाँ हम नहीं रहते, जहाँ होश नहीं रहती, वहाँसे भी संकल्प हमें जाग्रत कर देता है।

संकल्पकी महिमाको अनुभव कीजिए। वही यहाँ भी आपकी पूरी सहायता करता है। संकल्प अपने पूर्व संकल्पोंको स्थगित कर सकता है और नई दिशाके लिए समझ, वृत्ति व जिज्ञासाका भी उदय कर देता है।

अन्तःतदीक्षण आपकी भ्रान्तियोंको, मान्यताओंको, सुख-दुःखके अनुभवको क्षणभरमें उड़ा सकता है। प्रयोग करके देखिए। इसमें प्रतीति अप्रतीत हो जाती है। जिज्ञासा, श्रद्धा, मुमुक्षाका उदय हो जाता है। किसी वस्तुका तिरस्कार न करके, उसकी उपेक्षा न करके, उसकी द्वैत-भ्रान्ति को पुष्ट न करके आप केवल उनमें भगवद्भाव करें, तो वह वस्तु सद्भावकी भूमिकामें ही अस्त हो जायगी।

संकल्पका और अन्तःतदीक्षण प्रक्रियाका आप समादर करें। आपके जीवनमें अद्भुत परिवर्तन आयेगा। सारा जीवन वासनाओंके अनुसार

चलता है, मनोमुखी होता है। यदि हम अन्तःतदीक्षणका प्रयोग करते हैं, तो हमारा जीवन वासनाके शासनसे मुक्त हो जायगा और ज्ञानके शासनमें प्रतिष्ठित हो जायगा। निर्विचार स्थिति लानेका यह श्रेष्ठ उपाय है। निर्विचार स्थितिसे उपलक्षित अपना स्वरूप स्पष्ट हो जायगा। योगकी प्रक्रियासे ऐसी निर्विचारता नहीं आती।

अन्तःतदीक्षणमें भगवद्भावनासे निर्विचारता की स्थिति आती है। यह निर्विचारता लक्ष्यगर्भित होती है। अर्थात् जहाँ हमें पहुँचना है, जिस परमानन्दकी स्थितिको प्राप्त करना है, वह भी अभिव्यक्त हो जाता है। ऐसी निर्विचारता हमें स्वरूपकी स्मृति दे देती है, स्वरूपका ध्यान दिला देती है और हम विचारोंसे, विकारोंसे, मानसिक संघर्षसे असंग व अप्रभावित हो जाते हैं।

तदीक्षण व अन्तःतदीक्षणकी प्रकृति बहुत विलक्षण है। यह प्रक्रिया अन्तिम पहुँचको, अन्तिम लक्ष्यको ध्यानमें रखकर क्रियान्वित की गई है। आजकल विचारक नेति-नेति प्रक्रियापर बल लगाते हैं; परन्तु उससे श्रेष्ठ व उचित ओमिति प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया वैदिक है, श्रौत है। ब्रह्मसाक्षात्कार, आत्मसाक्षात्कारके लिए ओमिति प्रक्रिया सरल, सहज और उपलब्ध है। योगवासिष्ठ, उपनिषद्, भागवत आदि पुराण, गीता- इन सब ग्रन्थोंमें इस प्रक्रियाकी बहुत महिमा गाई हुई है। विघ्नोंकी निवृत्ति, अंहकारकी शिथिलता जैसी इस प्रक्रियामें है, वैसी अन्यत्र सुलभ नहीं है। शरणागतिका भाव भी स्पष्टरूपसे समझमें आ जाता है।

ॐ ब्रह्म सर्वम्

तदीक्षण और स्वेक्षण

क्या तुम्हें अपनेसे भिन्न किसी चीजका अनुभव होता है? तुम कहोगे कि हाँ, शरीरका अनुभव होता है। परन्तु शरीरका अनुभव नहीं होता, वह केवल प्रतीत होता है। अस्तित्वरूपसे शरीरका अनुभव कभी नहीं होता। जब तुम शरीरको गम्भीरतासे देखने लगोगे, शरीर गायब हो जायगा। केवल अपना जो अस्तित्व है- सुषुप्तिशेष, वह रहता है। किसी और चीजका अस्तित्व अनुभवमें नहीं आता। सुषुप्तिशेषके अतिरिक्त सब प्रतीतियाँ हैं। वे आती हैं, प्रतीत होती हैं और फिर गायब हो जाती हैं; परन्तु

अस्तित्व कभी गायब नहीं होता। श्रुति कहती है और अपना भी अनुभव है कि वह अविलुप्त है। जब व्यक्ति उसका ध्यान करता है तो ध्यान भी वह खुद ही देता है और अपना ही ध्यान करता है। कहनेके लिए दो बातें हुई। वस्तुतः एक ही बात है। ध्यान सिद्ध होनेपर फिर **'न स पुनरावर्तते'** फिर उसको भ्रम नहीं होता, या कहो कि वह फिर संसारमें नहीं आता। या ऐसे कहो कि उसकी शरीराकार- विषयाकार- वृत्ति नहीं बनती। जब व्यक्ति अपनेपर, अस्तित्वपर ध्यान देता है तो ध्यानका विषय और ध्यान देनेवाला वह खुद ही होता है।

अब इसे निषेधात्मक पद्धतिसे समझो। दूसरी तरफ जो ध्यान जा रहा है, उधर ध्यान देना बन्द कर दो, बस। अपने-आपमें तो हम हैं ही। अन्य विषयकी ओर जो ध्यान जा रहा है, वह क्यों जा रहा है? उसका क्या प्रयोजन है?

उस तरफ ध्यान देना बन्द कर दो। इसे पोजिटिव ढंगमें ऐसे कहेंगे कि अपनी नजर अपने ऊपर रखो, बस। अपनी ओर देखनेका अर्थ है- खुद ही हो जाना। तर्कवाले निगेटिव उत्तरको मानते हैं और श्रद्धालु व्यक्ति पोजिटिव बात मान लेता है कि हाँ ऐसा ही है। अब हम अपनी नजर अपनेपर ही रखेंगे। अर्थात् अन्यको प्रकाशित न करके अपने-आपको प्रकाशित करो तो तुम खुद हो जाओगे, खुद ही रहोगे। यह अति सरल है। विषयाकारवृत्तिके आग्रहके कारण ही यह कठिन लग रहा है। निर्गुण-निराकार तो वृत्तिका सहज स्वभाव है। सगुण-साकारका ध्यान अथवा अन्य आकार बनाना बहुत कठिन है। कृष्णाकारवृत्ति बनानेमें बहुत प्रयास करना पड़ेगा। आकार बनाओगे तो भी वह २ सैकेण्ड ही ठहरता है। थोड़ी देर भी एक आकारपर रुक नहीं सकोगे, वह गायब हो जायगा। केवल

निर्गुण-निराकार ही सबसे सरलहै।

विषयाकारताका बहुत अधिक अभ्यास पड़ा हुआ है। कम-से-कम एक आकारपर तो आओ। जब मैं आपमें श्रीकृष्णको देखूँगा तो उनकी एक झलक दीखेगी, उतने सैकेण्डतक अन्य आकार तो कट जायगा। अन्य आकार हटते ही प्रवाहक्रम टूट जायगा और उसका प्रभाव नहीं पड़ेगा। आपके प्रति मेरी जो व्यवहारिक स्वीकृति है, तदीक्षण करते ही उसमें विकल्प आ जायगा। तदीक्षण-प्रक्रिया कोई कल्पना नहीं है, यह दर्शन है, विज्ञान है। जैसे, मेरी आपके प्रति जो भी भावना है, संवित् है कि आप अमुक स्वभाववाले हैं, आपकी अमुक ढंगकी प्रकृति है आदि-आदि और मैं आपमें श्रीकृष्णका दर्शन करुँ तो आपकी उन सारी स्वीकृतियोंको हमने तिरस्कृत कर दिया, गौण कर दिया, श्रीकृष्णको प्रथम कर दिया।

श्रीकृष्णके प्रति हमारी क्या भावना है? श्रीकृष्ण कौन हैं? वे हमारे रक्षक हैं, हमारे जीवनके आश्रय हैं; सर्वशक्तिमान् हैं। जब हम उन्हें आपमें देखेंगे तो आपके प्रति जो हमारा भाव था कि आप ऐसे-ऐसे हैं, वह भाव, संकल्प कट जायगा, वह काम नहीं करेगा और श्रीकृष्णको हम जो मानते हैं, वही संकल्प काम कर जायगा। यदि श्रीकृष्णके प्रति हमारे मनमें विकल्प आ जायगा, तो भी काम नहीं होगा। इसलिए यदि आप भगवान्को मानते हैं; चाहे रामको, कृष्णको अथवा हनुमान आदिको। आकारसे हमारा कोई मतलब नहीं है। उस आकारके प्रति आपका जो भाव है, वह काम करेगा। जैसे हनुमानजी के प्रति आपका यह ख्याल बनेगा कि ये रामके भक्त हैं, ब्रह्मचारी हैं, शक्तिशाली हैं, ये सब ख्याल, भाव सूक्ष्ममें काम करते हैं। आपके पास कोई व्यक्ति आये और आपको ख्याल है

कि यह दुष्ट है तो आपका उसके प्रति दुष्टताका संकल्प ही काम करेगा। वह आपके साथ दुष्टताका ही व्यवहार करेगा। अब आप उस व्यक्तिमें श्रीकृष्णकी भावना करो। श्रीकृष्णके प्रति आपकी रक्षककी भावना है कि वे रक्षा करते हैं, तो रक्षाका संकल्प लग जायगा और आपकी रक्षा हो जायगी। इसीतरहसे स्वीकृतियाँ होती रहती हैं और आपको पता भी नहीं लगता। स्वीकृति बहुत सूक्ष्म होती है। स्वप्नमें और मनोराज्यमें ऐसा ही होता रहता है। यह सब आध्यात्मिक मनोविज्ञान है।

सीधे-सीधे इसपर ध्यान दो कि हम असलमें क्या हैं? हमारी सहजता क्या है? **गीतामें आया है- 'सत्त्व, रज और तमसे जो असंग है, वह ज्ञानी है।'** दूसरी जगह है- **'जिसकी सम्पूर्ण कामनाएँ समाप्त हो गयी हैं और जो अपने-आपमें तृप्त है, वह ज्ञानी**

है।' तीसरी जगह यह बताया है कि **'जो किसीसे क्षुब्ध नहीं होता और जिससे कोई क्षुब्ध नहीं होता, वह ज्ञानी है।'** यह तुम्हारी सहजता है। तुममें यह सब मौजूद हैं। यह तुम्हारे ही बारेमें है; परन्तु यदि तुम इसे अंहकारपूर्वक जबरदस्ती लाना चाहो तो यह कभी नहीं आयेगी। समता, असंगता, निरहंता तुममें मौजूद है। तुम्हे लानी नहीं है, सिर्फ तुम्हारी नजर तुमपर नहीं है। जब तुम्हारी नजर विषमपर, विषयपर है तो विषमता रहेगी। यदि तुम्हारी नजर समतापर है, तो सम रहोगे।

ॐ ब्रह्म सर्वम्

स्वेक्षण अर्थात् आत्मरूप देखना

स्वेक्षण या तदीक्षणका अर्थ है कि विषयको, सर्वको, अन्यको, सत्यसे, अविषयसे, असर्वसे, अपनेसे अपृथक् अनुभव करना, निश्चय करना, मानना और संक्षिप्ततम आत्मीय व्यवहार करना। टेलीविजन या स्वप्नमें एक आकृतिको आत्मप्रकाश स्वीकार करना। एक ध्वनि या शब्दको आत्माकाश देखना। इसीप्रकार सर्वेन्द्रियों सहित उनके विषयोंको भी। सर्वात्मभाव अर्थात् **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** की अविस्मृतिपर्यन्त। इसे समझ करके स्वेक्षण या तदीक्षण करना चाहिए।

मनुष्यके पास ८० से ९० प्रतिशततक अनुकूलता ही होती है। १० से २० प्रतिशत

प्रतिकूलताएँ आती-जाती हैं। अतः व्यक्तिको सर्वदा ८०-९० प्रतिशतपर ही ध्यान देना चाहिए और मुस्कुराते रहना चाहिए। १० से २० प्रतिशत को मिथ्या अहंकारकी निवृत्तिमें अथवा त्यागमें उपयोग करना चाहिए। स्वप्न आते हैं, बीच-बीचमें सुषुप्ति भी। जागते ही स्वप्न अपह्नुत हो जाता है और व्यक्ति स्वप्नोंसे लगभग अप्रभावित रहता है, मुक्त भी। इसीप्रकार जाग्रत्में भी स्वप्न या मनोराज्य या विचार आते-जाते रहते हैं और सुषुप्तिके स्थानपर स्वप्नरहित स्वरूपस्थिति रहती है। यदि व्यक्ति उसपर ध्यान दे दे, तो जाग्रत्-स्वप्न व्यर्थप्राय हो जाते हैं और व्यक्ति स्वस्थ रहता है। गतक्षणतक सब स्वप्न था- ऐसी संवित् मुक्तिका द्वार है।

परमात्मा अविषय निर्विषय है। अविषयका अर्थ है, जिसे कोई विषय नहीं कर सकता। कोई भोग नहीं सकता, न ही जिसे कोई जान

सकता है और न प्राप्त कर सकता है। विषय ही ग्रहण होता है। जो किसी भी प्रकारसे इन्द्रियोंका, मन-बुद्धि-अन्तःकरणका, शास्त्रका विषय नहीं होता, वह अविषय है। निर्विषयका अभिप्राय है- जिसमें कोई विषय नहीं है, कोई विशेषता नहीं है। किसी भी विशेषतासे वह ग्राह्य नहीं है। परमात्माको न तो विषय कर सकते हैं और न ही किसी लक्षणके द्वारा यह कहा जा सकता है कि वह ऐसा है अर्थात् वह 'इति' पदका वाच्य नहीं है।

पहले **'सर्वं दुःखमयं जगत्'** अर्थात् विवेकके अनुसार या शास्त्रानुसार जगत्को दुःखरूप स्वीकार करो अथवा आदेशानुसार यह स्वीकार करो कि मुझे सन्त, सद्गुरुने कहा है कि- 'विषयरूप दुःखकी ओर ध्यान मत देना।' अतः मैं अब उधर ध्यान नहीं दूँगा। सर्वत्र ब्रह्मभावना करो या भगवद्भाव करो। जिसे

जीवनसे हटाना है, उसमें भगवद्भाव करो तो वह हट जायगा। जिसे जीवनमें लाना है, उसमें सद्भावपूर्वक तदीक्षण करो और बार-बार उसे वृत्तिमें लाओ अर्थात् भगवदाकारवृत्ति करो; तो वह जीवनमें प्रतिष्ठित हो जायगा।

वासनाका जो भी अभ्यास पड़ चुका है, उसका अनभ्यास ही उसकी निवृत्तिका उपाय है। उसकी ओर ध्यान न दो, तो वह अभ्यास क्षीण हो जायगा। ध्यान न देनेकी सामर्थ्य संकल्पसे और तदीक्षणसे आयेगी। जैसे, यदि अस्वस्थताकी संवित् बन गई है, तो आप यह स्वीकार करो कि- 'मैं स्वस्थ हूँ, मेरा स्वरूप भी स्वस्थ है, मेरे स्वभावमें भी स्वस्थता है, शरीर भी प्रकृतिस्थ रहता है। अस्वस्थताका तो यह आगन्तुक आरोप है। मुझमें रोग नामकी कोई चीज नहीं है।' पहले उसे असत् स्वीकार करो। अब यह देखो कि यह रोग नहीं है, यह तो परमात्मा है; जो

अनेकरूपमें व्यक्त रहता है। रोगको भगवद्रूप अनुभव करो या आत्मरूप अनुभव करो। तुम अधिष्ठानको स्पर्श करो, प्रतीतिको नहीं। फिर तुम्हारा रोग अध्यात्ममें प्रवेश नहीं करेगा। 'यह रोग है, यह रोग है'- जब ऐसी सत्ता-स्फूर्ति उसे देते रहते हैं, तो उसकी आयु बढ़ जाती है। रोगको स्वीकार न करनेसे माने उधर ध्यान न देनेसे वह क्षीण होकर समाप्त हो जाता है। पहले उसे अस्वीकार करना, फिर उस प्रतीतिको अधिष्ठानके अनुभवसे निवृत्त करो अर्थात् अधिष्ठानाकारवृत्ति बनाओ; तो अध्यस्त नहीं रहेगा। लोग प्रतीतिको सत् मान लेते हैं; फिर दुःखरूप मानते हैं और उससे भयभीत होते हैं कि इसका परिणाम क्या होगा?

'मैं आनन्दस्वरूप हूँ'- यह निर्गुण-निराकार वृत्ति है। 'यह सब आनन्दमय है'- यह भी लगभग निर्गुण-निराकार वृत्ति है।

व्यर्थकी बातोंपर ध्यान मत दो। सत्य एक ही होता है, वह तुम्हीं हो। रोग सत्य नहीं हो सकता। हम आधि, व्याधि, उपाधिको स्वीकार करनेको तैयार नहीं हैं। हम तो हम ही हैं, बस अन्य कुछ नहीं हैं। कोई वृत्ति मत बनाओ, न विषयाकारवृत्ति और न आश्रयाकारवृत्ति। कोई वृत्ति न बनाना ही आश्रयाकारता है, ब्रह्माकारता है। आश्रयाकार वृत्तिका प्रयास भी मत करना, कोई ख्याल मत बनाना, कोई शब्द मत लाना। एक सहजता है- **'अस्तीत्येवोपलब्धव्यम्।'** बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है- **'आत्मेति'**। 'आत्मा, बस।' इससे अधिक शब्दकी भी जरूरत नहीं है। तभी ऊब निवृत्त हो सकती है।

प्रयास परिच्छिन्नभावमें होता है, अहंकारमें होता है। अतः परिच्छिन्नभावका अधिक अभ्यास मत करो। जीवनको अधिक-से-अधिक चैतन्यकी ओर प्रवाहित करो, अन्य कोई भी

प्रयास करनेकी जरूरत नहीं है। सबकुछ इसीमें समाहित हो जायगा।

तदीक्षण करनेसे विषयाकारता कटती है, अप्रतीत होती है और स्वेक्षणमें विषयाकारता तो कटती ही है और साथमें आत्माकारता भी बनती है। तदीक्षणमें क्षणिक आत्माकारता होती है। तदीक्षणकी याद आते ही विषय गायब हो जाता है और स्वेक्षण सहजमें हो जाता है। यह काम अनायास हो जाता है। तदीक्षण व स्वेक्षणमें विषयानुसारी प्रवाह कटता है और चेतनानुसारी प्रवाह प्रकाशित होता है। ऐसा बार-बार करनेसे विषय और विचार आने बन्द हो जायँगे। जब कभी विचार, आकार प्रतीत हों, तो यही अनुभव करना कि ये विचार नहीं हैं, ये तो मैं हूँ। मुझसे विचारका उदय हुआ, मुझमें ही उसका लय हुआ, अतः यह विचार मैं ही हूँ। अपनेमें ही अपनेको देखरहा हूँ-यही स्वेक्षण है।

ॐ ब्रह्म सर्वम्

सदैव आत्मानुभव करो

जो भी प्रतीति हो रही है, वह प्रकाशरूप है, चेतन है। वह न तो प्रकाशकी अभिव्यक्ति है और न ही प्रकाशका विवर्त है। वस्तुतः वह है ही नहीं। वह तो प्रकाशमात्र है। इसप्रकारसे चिन्तन करना चाहिए। जो उदाहरण टेलीविजनका है, वही अपना है। मुझमें सेव दिखाई दिया, वह न तो मुझ चेतनका विवर्त है, न मुझ चेतनकी अभिव्यक्ति है, वह मैं ही हूँ। अतः जो कुछ भी मुझमें दीख रहा है, वह परिहार्य या दुःखरूप नहीं है, वह मिथ्या नहीं है, वह विवर्त नहीं है, वह भगवान्‌की अभिव्यक्ति नहीं

है; वह तो अपनेसे अपृथक् है। इस समझपूर्वक जो ध्यान लगेगा, वह स्थिर रहेगा। शेष स्थितियाँ नष्ट हो जायँगी। साकार-दर्शनमें क्षणिकता है। मिथ्या, विवर्त, अभिव्यक्ति माननेपर सूक्ष्म पृथक्ताकी प्रतीति बनी रहती है।

सर्वं तं परादात् योऽन्यत्रात्मनो सर्वं वेद।

(बृहदा०)

'उदरमन्तरं कुरूते अथ तस्य भयं भवति।'

'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।'

(कठ०)

अगर आप सत्य-चेतनको, अपनेसे थोड़ासा भी पृथक् अनुभव करते हैं, तो वह आपको भय और दुःखमें आबद्ध कर देगा। जो कुछ तुम्हें प्रतीत होता है, वह तुमसे पृथक् नहीं होता; इसलिए उसे आत्मरूप अनुभव करो। काम-क्रोधको मिटानेकी जरूरत नहीं है, उसे आत्मरूप अनुभव करो। जिसे मिटाने जा रहे

हो, वह तुम ही बने हुए हो। फिर अपने साथ संघर्ष कैसे करोगे? या तो तुम अपनेको भोगना चाहते हो अथवा अपनेको हटाना चाहते हो? दोनों ही रूपोंमें तुम अपनेसे संघर्ष करोगे। परिणाम यह होगा कि अपनी अज्ञानताका भ्रम बना रहेगा।

विषयाकारताको क्षीण करनेके लिए भगवदाकारताका अभ्यास करना है। यह सर्वात्मभावमें पर्यवसित होनेवाला है। सर्वात्मभाव स्वभाव बन जाय; इसलिए स्वेक्षण करो। विमुखतारूप मायाके प्रति अर्थात् देह और वृत्तियोंके प्रति, विचारों और अहंके प्रति, आधि-व्याधि-उपाधिके प्रति, स्थूल-सूक्ष्म-कारणके प्रति, जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिके प्रति, बाह्य परिवेशके प्रति, अन्तःकरणके प्रति, आनन्दमय-कोषके प्रति ब्रह्मात्मभाव करो।

जो भी अन्य होगा, वह दुःखरूप होगा।

स्वेक्षण माने होता है- 'जो भी प्रतीत हो रहा है, वह मैं हूँ।' आत्मा सुखस्वरूप है। जितने भी संवेदन हैं, वे वही होते हैं, जिसे महसूस होते हैं। जिसे महसूस हो रहा है, वही ही महसूसियतके रूपमें है। कोई भी दर्द, प्रतिकूलता नहीं है, यह मैं हूँ- इसप्रकार आत्माकारवृत्ति होने दो, सुषुप्तिशेष हो जाओ, बृहत् हो जाओ। दर्दको आत्मरूप अनुभव करनेके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है। सारे संवेदन आत्मा ही होते हैं। अतः आत्माके सिवाय दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। इसलिए सबको आत्मरूप अनुभव करो।

कोई भी प्रतीति 'मैं' ही है। 'मैं' माने निर्विषय-अविषय, निर्गुण-निराकार-निर्विशेष। जब आत्माको निर्विशेषरूपसे अनुभव करोगे तो द्वैतभाव समाप्त हो जायगा। देश, काल तो कल्पना है। जब कोई अपनेको आकारवान् देखेगा, तो दूसरा भी आकारवान् ही दीखेगा। अपनेसे

पूछो कि- 'मैं कौन हूँ?'

'मैं हूँ आनन्द।' अगर अपनी (आनन्दकी) याद आयेगी, तो दुःख रहेगा ही नहीं, दूरी-देरी समाप्त हो जायगी। आनन्दमें कालका पता ही नहीं लगता। मूलतः मैं आनन्दरूप हूँ। अतः कुछ भी करनेमें मैं अपनेको-सुखको ही चाहता हूँ।

ॐ ब्रह्म सर्वम्

सर्वत्र आनन्दानुसन्धान

'मैं ही यह सब हूँ'- **'अहमेवेदं सर्वम्'**। जैसे ही देहका, अन्तःकरणका ख्याल आया, तुरन्त 'अहमेवेदं सर्वम्' अनुभव करो, तो वह शान्त हो जायगा। मैं ही अन्तःकरणके रूपमें हूँ, मैं ही जगत्के रूपमें हूँ। पहले मैं होता है, बादमें जगत् आदि कुछ प्रतीत होता है। 'अहमेवेदं सर्वम्' का मतलब है कि सर्वको आत्मरूप, आकाशरूप अनुभव कर लिया जाय। मैं ही देहादि सर्वके रूपमें हूँ। जो भी तुम चाहते हो, वह चाह और चाहनेवाला सुषुप्तिशेष परमात्मा ही है- ऐसा अनुभव करो। यह सब माने सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्माण्ड, सभी योनियाँ मैं ही हूँ। मैं ही यहसब हूँ। उपनिषद्में इसप्रकार आता है-

'स एवाधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतःस एवेदँ सर्वम्।'

स माने वह। जबतक हमारा लक्ष्य आनन्द परोक्ष है, अभी अनुभवस्वरूप नहीं हुआ है, ज्ञात नहीं हुआ है, जबतक केवल श्रवणमात्र किया है; तब उसके लिए 'स' (वह) का प्रयोग होता है।

वही नीचे है, वही ऊपर है, वही पीछे है, वही सामने है, वही दाहिने है, वही बायें है, वही यह सब है। इस मन्त्रके आगे इसप्रकार है-

'आत्मैवाधस्तात् आत्मा उपरिष्टात् आत्मा पश्चाद् आत्मा पुरस्ताद् आत्मा दक्षिणतो आत्मा उत्तरतः आत्मैवेदं सर्वम्।'

आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही पीछे है, आत्मा ही सामने है, आत्मा ही दायें है, आत्मा ही बायें है, आत्मा ही यह सब है। पूर्णता करते हुए, इसके आगेका मन्त्र

है-

'अहमेवाधस्तात् अहं उपरिष्टात् अहं पश्चात् अहं पुरस्तात् अहं दक्षिणतो अहं उत्तरतो अहमेवेदं सर्वम्।'

पहले 'स-वह' कहा गया, फिर 'आत्मा' कहा गया; उसके बाद 'अहम्-मैं' कहा गया। सभी मन्त्रोंमें लक्षण एक-जैसे ही हैं। ठीक इसीप्रकारसे मुण्डकोपनिषद् (२/२/११) में है-

'ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्।'

उपनिषद् अनुभवका वर्णन करते हैं। उपनिषद्में उपासनाएँ या भावनाएँ दी गई हैं। बोधके प्रसंगमें, ज्ञानके प्रसंगमें भावनाएँ नहीं होतीं। गीतामें भी यही बात कही गई है- **'वासुदेवः सर्वम्।'** वासुदेव ही सब है। उपनिषद्में है- **'ओंकारेवेदं सर्वम्।'** जो ॐ है, वही वासुदेव

है, वही ब्रह्म है, वही आत्मा है, वही 'स' (वह) है; वही मैं है। सबका पर्यवसान मैं में ही होगा।

मैं है- सुषुप्तिशेष आकाश। जो भी अनुभाव्य या दृश्य है, वह मैं सुषुप्तिशेष आकाश है- ऐसी भावना या अनुभव करना चाहिए। जो शरीर, अन्तःकरण, जगत् प्रतीत हो रहा है, वह शरीर, अन्तःकरण, जगत् आदि कुछ नहीं है। परमात्मा ही इन रूपोंमें अभिव्यक्त हो रहा है। जैसे, मिट्टी ही घड़ेके रूपमें दीख रही है। शरीरका मूल उपादान है- मैं। अतः मैं ही देहके रूपमें दीख रहा हूँ। अन्तःकरणमें तदीक्षण करनेसे बाहर भी बार-बार तदीक्षण होने लगेगा।

पहले मैं होता है, बादमें यह-वह होता है। मैं ही मुख्य होता है और मैं ही अस्तित्व है। यह-वह, सारा जगत् मैंकी कल्पनामें है। जीवनके हर कार्यमें तदीक्षणका, प्रार्थनाका ही आलम्बन लो और चेतनके सम्पर्कमें रहो। जीवनकी

आवश्यकताओंको भी ईश्वरसे जोड़ देना चाहिए अर्थात् उसमें भी ईश्वरसे सम्पर्क करना चाहिए; क्योंकि सब परमात्मा है। किसी भी पराधीनतासे मुक्तिके लिए प्रार्थना व तदीक्षण करना चाहिए।

आकारकी कल्पना करते ही तदनुरूप वृत्ति बन जाती है या ख्याल आ जाता है; क्योंकि मैं ही आकारकी कल्पनाके रूपमें बन जाता हूँ। **'अहमेवेदं सर्वम्'** का जो इशारा है, उधर ध्यान देना है। ध्यान देनेसे शब्द हटकर वृत्ति बन जायगी।

ॐ ब्रह्म सर्वम्

स्वाध्याय कीजिए

यदि आप सत्यानुसारी आनन्दमय जीवन जीना चाहते हों, तो निम्नलिखित पुस्तकोंका जिज्ञासा-पूर्वक विचार करें अथवा निम्नलिखित मेमोरी कार्ड या सी०डी० श्रवण करें -

१. त्रिपुरारहस्य, ब्रह्मयोग एवं योगभक्ति सूत्र (भाग- १, २ व ३)

मूल्य- प्रथम भाग - १००/-
द्वितीय व तृतीय भाग- २००/-

२. योगवासिष्ठानुशीलन (भाग- १ से ४)

मूल्य- प्रथम व द्वितीय भाग १००/-
तृतीय व चतुर्थ भाग २००/-

३. सुखका परिचय एवं प्राप्ति - मूल्य ५०/-

४. ईशावास्योपनिषद - मूल्य ४०/-

५. योगवासिष्ठानुशीलन, आत्मयोग, अद्वैतयोग पर सी०डी० - मूल्य ५०/- प्रति सी०डी०

मेमोरी कार्ड - मूल्य २५०/-

इन पुस्तकोंके अतिरिक्त 'नारद प्रेम-दर्शन, केनोपनिषद्, कठोपनिषद्, सत्यचर्चा' आदि पुस्तकें प्रकाशनाधीन हैं।

मेरा विश्वास है कि यह साहित्य आपको सम्यक् दृष्टि प्रदान करेगा और लक्ष्यकी प्राप्तिमें अथवा आनन्दके अनुभवमें अथवा सत्यके साक्षात्कारमें अथवा अद्वैतबोधमें अथवा दुःखोंकी निवृत्तिमें पूरा सहयोग करेगा।

❖❖❖❖

पुस्तकें, सी०डी० व मेमोरी कार्ड प्राप्ति स्थान

❄❄❄❄

ब्रह्मयोगी संविदानन्दजी

ब्रह्मनीड, गोविन्द गौशाला के पीछे,
बराड़ा, जिला- अम्बाला
मोबाइल- 09355556468

❋❋❋❋

मुकेश कुमार

571, गली नं० 16,
गाँधी कालौनी, मुजफ्फरनगर
मोबाइल- 09319170555